

Clash of cultures in a federation

The homogenising tendency of the union in India and EU clashes with the particularism unique to individual states

Krishnan Srinivasan, [Former Foreign Secretary]



Though probably the most equitable form of governance for multiracial, multicultural countries, there are only a few confederations in the world, such as Canada and Switzerland. India and the European Union (EU) are unions. However, India is a federation because powers are divided between the Union and the States, and the EU a supranational organisation that defies definition, with both confederal and federal aspects. It is this division of powers in India and the EU that brings the unions into conflict with their constituent parts.

Latest controversy in the EU

The EU is variously criticised as a “political dwarf”, “a hobbled giant” distracted by internal

bickering and competing national agendas, and an aggregate of secondary powers in search of primary status through collective agency. Despite the EU being one of the largest economies of the world, the 27 leaders squabble over issues from fisheries to budget allocations. The union finds it easier to promote universal standards in areas like climate change and food and bio-safety than domestic values. The latest controversy with Hungary and Poland on gay and lesbian rights is a case in point. Gay marriage is not recognised by Budapest and only heterosexual couples can legally adopt children. The LGBTQ law that took effect in July outlaws information perceived as promoting homosexuality or gender change to children under 18. This led to strong criticism from 17 liberal EU nations who believe the Hungarian law undermines the principle that discrimination on the basis of sexuality, ethnicity and gender is not permissible within the union.

Hungarian Prime Minister Victor Orbán has countered by proposing a national referendum on the law. He has been re-elected thrice, commands two-thirds of the legislature, and has diminished institutions designed to limit the powers of the state, such as free media, universities and an independent judiciary. Mr. Orbán also regularly frustrates EU’s unity on foreign policy, such as on refugees in 2016, opposing criticism of China’s actions in Hong Kong, and the call for a ceasefire between Israel and Hamas. Hungary was the first EU member to accept Russian and Chinese COVID-19 vaccines before approval by the EU medicines regulator.

The European Parliament voted overwhelmingly to haul Hungary before the European Court of Justice over its LGBTQ law, and while there is an EU provision to remove voting rights from an offending country, penalties require unanimous agreement from EU states. This will never be forthcoming since Hungary and Poland support each other and the union cannot expel a member state without the unanimity requirement.

Poland's Catholic-conservative governing party takes a similar stance on LGBTQ with by-laws that have designated one-third of the nation as 'LGBT-free zones'. Budapest and Warsaw are supported by Slovenian Prime Minister Janez Janša, who condemns Brussels for imposing "imaginary European values" without paying heed to local tradition. All three countries' leaderships have expressed doubts, and placed restrictions, on the functioning of judicial independence.

Although none of these leaders believe they can convince their EU colleagues to follow their social policies, they do not wish to separate from the union, since EU membership is supported by a huge majority. Hungary is the second-largest net beneficiary of the EU budget, receiving €5 billion more than it contributes each year. The measures introduced by the three nations are for domestic popularity in a combined population of nearly 50 million with cultural traditions different from more liberal EU member states. The crisis represents a clash of cultures, which underlines why integration towards a closer union is unlikely to materialise.

A fractious relationship

In India, the Centre and Opposition-controlled States have a historically fractious relationship. Prime Minister Jawaharlal Nehru in 1959 dislodged the Communist government in Kerala on specious grounds. Ever since, the pattern of the Union government attempting to subvert Opposition States by stimulating defections, ordering selective raids by investigative agencies, electronic surveillance, and delaying or refusing financial entitlements has become the unsavoury norm, now taken to extremes by Hindutva ideologues in control of the Centre. The tensions between New Delhi and the Opposition-led periphery are magnified by differences in values, perceived arrogance on the part of the Centre and the victimhood card played by Opposition parties. The homogenising bias of the union clashes with the particularism unique to individual States, resulting in the clash of cultures. The term 'cooperative federalism', coined by Prime Minister Narendra Modi, has been reduced to an oxymoron.

Date:05-08-21



जनसंख्या कानून पर संसद की आनाकानी क्यों?

विराग गुप्ता, (सुप्रीम कोर्ट के वकील और 'अनमास्किंग वीआईपी' पुस्तक के लेखक)



संसद में लगातार हंगामे के बीच उसकी विफलता के कुछ और पहलुओं की पड़ताल जरूरी है। 30 साल पहले नरसिम्हाराव सरकार द्वारा आर्थिक सुधारों की शुरुआत के साथ स्वास्थ्य मंत्री फोतेदार ने राज्यसभा में संविधान संशोधन बिल पेश किया था। इसके अनुसार जनसंख्या नियंत्रण के लिए संविधान के अनुच्छेद 47 और 51A में संशोधन से सरकार और जनता को जवाबदेह बनाना था। 30 सालों से कोई बहस नहीं होने के बावजूद, वह बिल आज भी जिंदा है। सन 2000 में अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा नियुक्त जस्टिस वेंकटचलैया आयोग ने जनसंख्या नियंत्रण के बारे में महत्वपूर्ण रिपोर्ट दी। जनसंख्या नियंत्रण के लिए कांग्रेस, भाजपा, सपा, राजद, शिव सेना और तृणमूल

कांग्रेस समेत अनेक पार्टियों के नेता, संसद में 36 निजी विधेयक पेश कर चुके हैं। वर्तमान में केंद्रीय मंत्री प्रहलाद सिंह पटेल ने 2016 में सांसद के तौर पर लोकसभा में निजी विधेयक पेश किया था। उसी तर्ज पर अब राकेश सिन्हा, रवि किशन और अभिषेक मनु सिंघवी के नए निजी बिल चर्चा में हैं। इन बिलों के समर्थन में सैकड़ों सांसदों ने दस्तखत करने के साथ राष्ट्रपति को प्रतिवेदन भी दिए थे। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ जब सांसद थे तो उन्होंने ऑनलाइन पोल करवा कर मोदी सरकार से जनसंख्या नियंत्रण के लिए कानून बनाने की मांग की थी। इस लंबी कहानी के बावजूद, संसद के इस सत्र में सरकार ने कहा कि दो बच्चों के मानदंड को लागू करने या कानून बनाने का कोई प्रस्ताव विचाराधीन नहीं है।

जनसंख्या नियंत्रण पूरे देश की सबसे बड़ी जरूरत है। पिछले 75 सालों में हमारे देश के क्षेत्रफल में कोई इजाफा नहीं हुआ, लेकिन आबादी 4 गुना बढ़ गई। अगर किसी घर में चार गुना लोग रहने लगे तो फिर सबको बिस्तर और रसोई कैसे मिलेगी? जनसंख्या का गरीबी और अशिक्षा से द्विपक्षीय रिश्ता है। वर्ल्ड बैंक की रिपोर्ट के अनुसार विश्व के 24% गरीब लोग भारत में रहते हैं। लगभग 47.9% भारतीय परिवारों में जहां पर 5 से ज्यादा बच्चे हैं, वे मकान, स्वच्छता, पानी, स्वास्थ्य व शिक्षा की कमी से जूझ रहे हैं। देश के 5 राज्यों बिहार, उप्र, झारखंड, राजस्थान व मप्र में प्रजनन दर राष्ट्रीय औसत से बहुत अधिक है। इन्हीं राज्यों में मानव विकास सूचकांक भी बहुत निचले स्तर पर है।

भारत में छोटे-बड़े, सभी नेता चीन का विकास मॉडल हासिल करने की बात करते हैं। संयुक्त राष्ट्र के आकलन के अनुसार 2030 तक हम चीन से आगे निकलकर दुनिया की सबसे बड़ी आबादी वाला देश बन जाएंगे। 2018-19 के आर्थिक सर्वे के अनुसार 2031 तक

भारत को बुजुर्गों की बड़ी जनसंख्या से निपटना पड़ेगा। चीन ने 1979 में एक बच्चे की नीति की अपनाई, जिसकी सफलता के बाद 2015 में दो बच्चों की नीति लागू हो गई। अब वहां तीन बच्चों की नीति लागू हो रही है। लेकिन भारत में पिछले 40 साल से इस बारे में कोई केंद्रीय कानून ही नहीं बना।

वर्ष 2015 में संसद को दिए गए जवाब में केंद्र सरकार ने कहा कि आईसीपीडी संधि की वजह से सरकार ऐसा कानून नहीं बना रही। 1994 में काहिरा में आयोजित जनसंख्या और विकास पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (आईसीपीडी) के घोषणापत्र पर भारत समेत अनेक देशों ने हस्ताक्षर किए। इसके अनुसार सरकारों को लोगों के प्रजनन अधिकार का सम्मान करना चाहिए। भारत ने मानवाधिकार और शरणार्थी जैसे विषयों पर अनेक अंतर्राष्ट्रीय संधियों पर हस्ताक्षर किए हैं। इसके बावजूद देशहित में उन संधियों के विपरीत जाकर अनेक कानून बनाए गए। अंतर्राष्ट्रीय संधि के तर्क को यदि सही मानें तो फिर यूपी और असम जैसे राज्यों में जनसंख्या नियंत्रण का कानून बनाने की होड़ क्यों मची है? 1976 में इंदिरा सरकार ने 42वें संविधान संशोधन से परिवार नियोजन को संविधान की सातवीं अनुसूची के तहत समवर्ती सूची में शामिल किया। उस अधिकार का इस्तेमाल कर केंद्र सरकार जनसंख्या नियंत्रण पर व्यापक कानून लाए। कानूनी सुरंगों से बचने के लिए इसके तहत बहुविवाह, लिव इन, गोद लेने और सिंगल पैरेंट के बारे में भी स्पष्ट नियम-कानून बनाने होंगे।

संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत लोगों को जीवन का अधिकार है। इसीलिए गरीबों के लिए रोटी, कपड़ा, मकान के बंदोबस्त की जिम्मेदारी सरकार को निभानी होती है। इसमें यह समझना जरूरी है कि जो पैरेंट्स बच्चों को भोजन, शिक्षा और स्वास्थ्य नहीं दे सकते, उन्हें अंतर्राष्ट्रीय संधि के तहत दो बच्चों से ज्यादा पैदा करने का हक नहीं मिल जाता। सन 1971 के बाद अब संसद की सीटों का परिसीमन आबादी के हिसाब से होगा। क्षेत्र, जाति और धर्म के आधार पर बंटे समाज से वोट हासिल करने का मंत्र सभी पार्टियों के नेताओं ने हासिल कर लिया है। बढ़ी हुई आबादी को फ्री में मोबाइल, बिजली, पानी और राशन देने से अगर नेतागिरी की दुकान चकाचक चलने लगे तो फिर जनसंख्या नियंत्रण पर संसद में ठोस सियासी पहल कैसे होगी? क्यों नहीं होती ठोस पहल? क्षेत्र, जाति और धर्म के आधार पर बंटे समाज से वोट हासिल करने का मंत्र सभी पार्टियों के नेताओं ने हासिल कर लिया है। बढ़ी हुई आबादी को फ्री में मोबाइल, बिजली, पानी और राशन देने से अगर नेतागिरी की दुकान चकाचक चलने लगे तो फिर जनसंख्या नियंत्रण पर संसद में ठोस सियासी पहल कैसे होगी?

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:05-08-21

सहकारिता मंत्रालय साबित होगा आशा का अग्रदूत?

मिहिर शाह, (लेखक शिव नाडर यूनिवर्सिटी में प्राध्यापक और योजना आयोग के पूर्व सदस्य हैं)

भारत सरकार ने गत 6 जुलाई को सहकारिता मंत्रालय नाम के एक नए मंत्रालय के गठन की घोषणा की। इसके एक ऐतिहासिक निर्णय होने की संभावना है। आज भारत में सक्रिय करीब 8 लाख सहकारी समितियों से 30 करोड़ से अधिक लोग जुड़े हुए हैं। बीते वर्षों में सहकारी समितियों ने कई अवतार लिए हैं लेकिन इस लेख में हमारा ध्यान ऋण सहकारी समितियों पर केंद्रित है जिनकी ग्रामीण गरीबों के लिए अहमियत को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं आंका जा सकता है। नब्बे के दशक के शुरुआती वर्षों तक कृषि क्षेत्र को दिए जाने वाले कुल संस्थागत कर्ज में 60 फीसदी से अधिक हिस्सा सहकारी समितियों का हुआ करता था। कई समितियां कृषि इनपुट भी मुहैया

कराती हैं और खाद्य एवं अन्य जरूरी वस्तुओं के संदर्भ में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के आउटलेट के तौर पर काम करती हैं। लेकिन दुखद रूप से पिछले कुछ वर्षों में सहकारी समितियों में बहुत तीव्र हास देखने को मिला है और आज संस्थागत ऋण वितरण में उनका अंशदान महज 10 फीसदी रह गया है।

दरअसल नब्बे के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण मुहैया कराने वाली व्यवस्था में साहूकार-कारोबारी-भूस्वामी की खतरनाक तिकड़ी की फिर से वापसी हो गई है। इसकी वजह यह है कि इस अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को लाभ कमाने से जुड़े मानकों का पालन सख्ती से करने को कहा गया। सार्वजनिक बैंकों के साथ महिलाओं के स्वयं-सहायता समूहों (एसएचजी) की बढ़ती भागीदारी ने पहले इस तिकड़ी को कुछ हद तक खेल से बाहर धकेला था। लेकिन बहुत ऊंचे ब्याज पर कर्ज देने वाले साहूकारों के शिकंजे को निर्णायक रूप से तोड़ने के लिए हमें एक सुधरे एवं पुनर्जीवित सहकारिता क्षेत्र की जरूरत है। असल में ग्रामीण गरीबों के शोषण एवं दमन की सदियों पुरानी व्यवस्था की धुरी साहूकार ही रहे हैं।

अब सवाल उठता है कि नया मंत्रालय हालात को सुधारने में किस तरह से मदद कर सकता है? सच तो यह है कि सहकारिता संविधान की सातवीं अनुसूची के तहत राज्य सूची का विषय है। ऐसे में सहकारिता मंत्रालय के गठन ने अनेक के मन में यह वाजिब सवाल खड़ा कर दिया है कि केंद्र सरकार कहीं राजनीति से प्रेरित होकर अपने अधिकार-क्षेत्र का अतिक्रमण तो नहीं कर रही है जो सहकारी संघवाद की उसकी ही घोषित नीति का संभवतः उल्लंघन करता है। बहरहाल हमारा मत है कि जल एवं कृषि जैसे राज्य सूची वाले दूसरे विषयों की ही तरह सहकारिता पर भी केंद्र को एक निश्चित भूमिका निभानी है जब तक यह काम राज्यों के हाथ मजबूत करने वाले एवं आनुषंगिकता के सिद्धांत को बल देने वाले एक तय ढांचे के भीतर होता है। आनुषंगिकता का मतलब है कि समस्या की जड़ के आसपास ही उसका समाधान मुहैया कराने की कोशिश, न कि हर समस्या के लिए एक ही तरह का रवैया अपनाना। दरअसल भारत में केंद्रीकृत नियोजन के दौर से ही हर तरह की समस्या के लिए एक ही तरह का रवैया अपनाया जाता रहा है और योजना आयोग के उन्मूलन के बावजूद यह सिलसिला जारी है।

भारी भ्रष्टाचार एवं राजनीतिक दखल की वजह से सहकारी समितियों की स्थिति में गिरावट आई है जिसकी मार पारदर्शिता, प्रबंधन एवं शासन पर पड़ी है। सहकारी समितियों का सुधार उन्हें सदस्य-केंद्रित, लोकतांत्रिक, स्व-शासित एवं वित्तीय रूप से व्यवस्थित संस्थान बनाने में मददगार होगा। वर्ष 2005 में ग्रामीण सहकारी ऋण संस्थानों के पुनरुद्धार पर गठित कार्यबल की भी यह प्रमुख अनुशंसा थी। मशहूर अर्थशास्त्री ए वैद्यनाथन की अगुआई वाले कार्यबल की अनुशंसाएं नए सहकारिता मंत्रालय के कामकाज का केंद्रबिंदु होनी चाहिए। वास्तव में, इन सुझावों को लागू करने की राह में आ रही चुनौतियों पर एक सजग नजर डालने से मंत्रालय के कामकाज को निर्धारित किया जाना चाहिए।

सहकारिता क्षेत्र की सुधारात्मक व्यवस्था का एक अहम पहलू केंद्र की तरफ से राज्यों को दी जाने वाली वित्तीय मदद के लिए प्राथमिक कृषि ऋण समितियों (पीएसीएस) को पेशेवर अंदाज एवं लोकतांत्रिक तरीके से चलाने के लिए राज्यों द्वारा किए गए सुधारों को शर्त बना देना चाहिए। ध्यान रहे कि पीएसीएस ही ग्रामीण सहकारी ऋण संरचना की बुनियाद हैं। जब पीएसीएस में सुधार लागू होते हैं और उनकी स्थिति मजबूत हो जाती है उनके जिला एवं राज्य स्तरीय ऋण समितियां भी कहीं मजबूत होकर उभरेंगी। यह बहुत बड़ी कवायद है जिसमें समितियों का ऑडिट एवं बहीखातों को दुरुस्त करना, प्रतिस्पर्धी बने रहने के लिए ठोस अकाउंटिंग एवं निगरानी व्यवस्था अपनाना और पारदर्शिता, तकनीकी उन्नयन एवं हजारों प्राथमिक कृषि ऋण समितियों के कर्मचारियों की क्षमता बढ़ाने पर जोर देना होगा।

जब राज्य इन गतिविधियों के लिए राजी हो जाएं तो केंद्र को इस पर आने वाली लागत का एक बड़ा बोझ खुद ही उठाना चाहिए। इसके लिए केंद्र को वित्त, शासन, प्रबंधन एवं कानूनी सुधार से संबंधित मानकों, सिद्धांतों एवं तरीकों का एक बेहद महत्वपूर्ण ढांचा खड़ा करना होगा ताकि राज्य एक निर्धारित समय-सीमा के भीतर उन पर चर्चा कर सहमति जता सकें। वैद्यनाथन पैनल की रिपोर्ट आए हुए कई साल हो चुके हैं और इस दौरान स्वयं-सहायता समूहों का मजबूती से उभरना एक बड़ा सकारात्मक प्रगति रही है। स्वयं-सहायता समूहों की सफलता के साथ-साथ उनकी नाकामियों से मिलने वाले सबक हमें सहकारी समितियों के बारे में दिशा दिखाने में बेहद मददगार हो सकते हैं।

यहां पर बुनियादी सवाल राज्य की भूमिका और नागरिक समाज के साथ इसके रिश्ते से जुड़ा हुआ है। राज्य की भूमिका को अहम मानने वाले लोगों को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि राज्य की भूमिका नागरिक समाज को समर्थन, सहयोग एवं सशक्त करने वाली होनी चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य से, अक्सर राज्य का कदम गरीबों की मदद के नाम पर मकसद को ही नुकसान पहुंचाने वाला साबित होता है। कई किसान आंदोलनों ने भी कर्ज मेला लगाने एवं कर्ज माफी योजनाएं लाने के लिए लामबंदी की है जिसने अंततः सार्वजनिक बैंकों एवं पीएसीएस जैसी संस्थाओं को कमतर करने का ही काम किया है। इसकी वजह से सहकारी समितियों को बंद करने का माहौल बनता है क्योंकि उनके बहीखाते लाल निशान की तरफ चले जाते हैं।

नए मंत्रालय के सामने यही असल चुनौती है और इसकी वास्तविक मंशा की एक परीक्षा भी है। क्या यह नियंत्रण पर आधारित अल्पकालिक राजनीतिक लाभ के प्रलोभन में फंस जाएगा? या यह इन बेहद अहम संस्थाओं की दीर्घावधि सेहत की दिशा में काम करेगा? उम्मीद की जानी चाहिए कि आलोचक गलत साबित होंगे और सहकारिता मंत्रालय सही मायनों में सहकारी संघवाद की भावना स्थापित करने के लिहाज से सहकारिता का एक अग्रदूत साबित होगा।

राष्ट्रीय
सहारा

Date:05-08-21

बदलाव के दो साल

आचार्य पवन त्रिपाठी

पांच अगस्त भारत की सम्प्रभुता एवं अक्षुण्णता के नजरिए से ऐतिहासिक दिन है। आज के दिन कश्मीर और धारा 370 को एक नया परिप्रेक्ष्य मिला एवं जम्मू एवं कश्मीर-लद्दाख को केंद्रशासित प्रदेश के रूप में गठन किया गया। यह बड़ा फैसला दो मुख्य सन्देश देता है, पहला, देश की सुरक्षा और सम्प्रभुता सर्वोपरि है और दूसरा, प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपनी पूरी राजनीतिक पूंजी दांव पर लगाकर एक बड़ा फैसला लिया जो देश के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाएगा। सत्तर वर्षों से चली आ रही यथास्थिति को बदलते हुए आगे बढ़ने का साहस एवं राजनीतिक संकल्प शायद प्रधानमंत्री मोदी के अलावा कोई दूसरा प्रधानमंत्री नहीं दिखा सकता है।

दो कदम आगे बढ़कर विकास की आधारशिला पर नव निर्माण का जो संकल्प उन्होंने लिया है, निश्चित रूप से राष्ट्र निर्माण में यह प्रयास सकारात्मक सिद्ध होगा। कहना न होगा कि यह ऐतिहासिक कदम उठाने के लिए दृढ़ संकल्प और इच्छाशक्ति की दरकार

होती हैं, और निश्चित ही प्रधानमंत्री मोदी ने दिखाई है। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कश्मीर समस्या की जटिलताओं को समझते हुए इसके समाधान के लिए नारा दिया था—‘कश्मीरियत, इंसानियत, जम्हूरियत’। कश्मीर की समस्या के प्रति उनका यह द्रष्टिकोण व्यापक, व्यावहारिक एवं मानवतावादी है। उनकी यह नीति उनके व्यवहार कुशल राजनेता एवं संवेदनशील कवि हृदय की साझा उपज थी। अभी हाल ही में जम्मू कश्मीर पर 14 विभिन्न दलों की सर्वदलीय बैठक बुलाई गई थी। इस बैठक के बाद प्रधानमंत्री मोदी ने कहा कि ‘दिल की दूरी’ और ‘दिल्ली की दूरी’ को हम खत्म करना चाहते हैं। साथ में प्रधानमंत्री मोदी ने जम्मू कश्मीर के युवाओं को राजनीतिक नेतृत्व देने एवं इन केंद्रशासित राज्यों में लोकतंत्र को और अधिक मजबूत करने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता भी दोहराई। इस सर्वदलीय बैठक में सरकार की तरफ से यह भी आश्वासन दिया गया कि जैसे ही हालात सामान्य होंगे, वैसे ही जम्मू एवं कश्मीर का राज्य का दर्जा वापस बहाल कर दिया जाएगा। प्रधानमंत्री मोदी के वक्तव्य में आप सहज ही वाजपेयी द्वारा दिए गए नारे के सूत्र तलाश कर सकते हैं।

इस ऐतिहासिक निर्णय के समय बहुत से राजनीतिक पंडितों एवं विपक्ष के नेताओं ने सरकार के इस कदम पर गंभीर प्रश्न खड़े किए थे। उन्होंने इसे ‘विध्वंसकारी कदम’ कहा था। उन्होंने यहां तक कहा था कि ‘आप सोच सकते हैं कि आपने जीत हासिल की है, लेकिन आप गलत हैं, और इतिहास आपको गलत साबित करेगा’। आज जब इस ऐतिहासिक निर्णय के दो साल हुए हैं, तो उन नेताओं की भविष्यवाणियां सिरे से गलत साबित हो रही हैं। घाटी के हालात लगातार सुधर रहे हैं, आंकड़े बताते हैं कि इस दौरान आतंकवादी एवं हिंसक घटनाओं में साफ कमी देखने को मिली है।

बीते दो सालों में केंद्र सरकार ने आतंकवाद के प्रति जीरो टॉलरेंस की नीति के तहत काम किया है। कश्मीर में आतंकी घटनाएं खत्म होने का सीधा अर्थ है—पर्यटन और विकास, जिसकी दिशा में कश्मीर लगातार आगे बढ़ रहा है। राजनीतिक प्रक्रिया भी धीरे-धीरे बहाल हो रही है। इसे सुरक्षा बलों की कामयाबी के साथ-साथ कश्मीर की जनता में सरकार और व्यवस्था के प्रति विश्वास बहाली के तौर पर देखा जाना चाहिए। दोनों ही केंद्रशासित प्रदेशों में पर्यटन की भरपूर संभावना है। पर्यटन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सरकार इस दिशा में लगातार पहल कर रही है। कहना न होगा कि आतंकवाद के दौर में राज्य की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार पर्यटन पूरी तरह से धराशायी हो गया था। पर्यटक आखिर उस प्रदेश में जाएंगे ही क्यों जहां जान-माल की सुरक्षा की कोई गारंटी न हो। कहना यह भी कि एक समय था जब बॉलीवुड की अनेक फिल्मों की यहां शूटिंग होती। हर दूसरा फिल्म निर्माता यहां अपनी फिल्म शूट करना चाहता था। लेकिन आतंकवाद ने कश्मीर में फिल्म की शूटिंग को तो बीते समय की बात बना दिया था।

अनुच्छेद 370 की समाप्ति और नए केंद्रशासित प्रदेशों के निर्माण का एक महत्वपूर्ण पक्ष लद्दाख के विकास से भी जुड़ा हुआ है। लद्दाख का नियंत्रण केंद्र के हाथों में आने से वहां इंफ्रास्ट्रक्चर का चौतरफा विकास हो रहा है। नयी सड़कें, टनल, एयरपोर्ट, हेलीपैड, खेल के स्टेडियम आदि के निर्माण के साथ वहां पर्यटन को सुलभ बनाया जा रहा है। लद्दाख के छात्र-छात्राओं को उच्च शिक्षा के लिए बहुत दूर जाना पड़ता था अब केंद्र सरकार ने वहाँ सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी बनाने के लिए 750 करोड़ रुपये के प्रोजेक्ट को मंजूरी दी है। पिछले वर्ष हुए लद्दाख के ‘स्वायत्त पर्वतीय विकास परिषद’ के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को बहुमत मिलना इस बात की पुष्टि करता है कि लद्दाख की जनता ने इस परिवर्तन पर अपनी मुहर लगा दी है। पंचायत चुनाव प्रक्रिया का सफल आयोजन निश्चित रूप से लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत करेगा। डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर के माध्यम से दूरदराज के लोगों तक आर्थिक मदद को सीधे पहुंचाया जा रहा है। भारत सरकार की सभी योजनाओं को बिना किसी संकोच के स्थानीय स्तर पर लागू किया जा रहा है। प्रशासनिक रिफॉर्म को लागू करना अब कहीं ज्यादा तीव्र और आसान हो गया है। युवाओं को स्किल और वोकेशनल ट्रेनिंग के माध्यम से आर्थिक सशक्तिकरण की ओर ले जाने के लिए भी विस्तृत परियोजनाएं लागू की गई हैं।

सबका साथ सबका विकास एवं सबका विश्वास के मूलमंत्र के साथ जम्मू कश्मीर एवं लद्दाख के नागरिक विकास एवं खुशहाली की नये अध्याय की शुरुआत करेंगे। युवाओं का भविष्य अब विश्वविद्यालयों, प्रयोगशालाओं एवं खेल के मैदानों में तय होगा। नये भारत के निर्माण में नया कश्मीर नई भूमिका निभाएगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

Date:05-08-21

डेट-ट्रैप का वैश्विक विरोध

डॉ. नवीन कुमार मिश्र

अपनी बढ़ती आर्थिक व सैन्य शक्ति का निरंतर दुरुपयोग करते हुए बदलती वैश्विक व्यवस्था में उत्तरोत्तर मुखर व आक्रामक होता चीन अपना प्रभुत्व बनाना चाहता है। विश्व में डेट-ट्रैप की साजिश के तहत आधारभूत ढांचे के विकास के नाम पर दूसरे देशों को कर्ज देना और कर्ज न चुका पाने की स्थिति में उनके संसाधनों पर कब्जा करना शुरू कर देता है। पाकिस्तान, श्रीलंका और मालदीव चीन के बड़े कर्जदार हैं। चीन बलूचिस्तान के ग्वादर पोर्ट पर 62 अरब डॉलर खर्च कर पाकिस्तान को कर्ज के जाल में फंसा चुका है। चीन के डेढ़ बिलियन डॉलर कर्ज के बदले श्रीलंका को हंबनटोटा बंदरगाह सौंपना पड़ा। हाल में ही कोलम्बो बंदरगाह भी चीन को दे चुका है।

चीन के 2017 में एक अरब डॉलर के फंड तथा बेल्ट एंड रोड के तहत 30 अरब डॉलर के निवेश से मंगोलिया के लिए इस कर्ज से बाहर निकलना आसान नहीं होगा। बंदरगाह विकसित करने और ट्रांसपोर्ट नेटवर्क को बढ़ाने के लिए मोन्टेनेग्रो भी चीनी कर्ज के जाल में फंस गया है। ताजिकिस्तान भी कर्ज के बोझ तले दबा है जिसमें कुल विदेशी कर्ज में चीन का हिस्सा 80 प्रतिशत है। किर्गिस्तान में वर्ष 2016 में चीन ने 1.5 अरब डॉलर निवेश किया था। कुल विदेशी कर्ज में चीन का 40 प्रतिशत हिस्सा है। आधारभूत ढांचा विकसित करने के नाम पर टोंगा, कॉन्गो, कम्बोडिया, बांग्लादेश, नाइजर और जांबिया जैसे देशों को चीन ने उनकी जीडीपी से 20 प्रतिशत से अधिक कर्ज दिया है। जिबूती में चीन का 10 बिलियन डॉलर का निवेश है और कर्ज के जाल में फंसाकर वह डोरलेह पोर्ट को अपने कब्जे में ले चुका है।

अफगानिस्तान में कुछ वर्षों से चीन की दिलचस्पी अपनी बेल्ट एंड रोड परियोजना को लेकर बढ़ी है। अमेरिका के हटने के बाद चीन अफगानिस्तान में अपना प्रभाव बढ़ाने के प्रयास में है, और पाकिस्तान के जरिए तालिबान से जुड़ने की कोशिश कर रहा है। न्यू सिल्क रोड परियोजना में यूरोप के 20 से अधिक देश शामिल हैं। इनमें रूस शामिल है। ग्रीस में चीन ने पिराएस बंदरगाह को बढ़ाने का खर्च उठाया है। सर्बिया, बोस्निया-हर्जगोविना व नॉर्थ मैसिडोनिया में सड़क और रेल निर्माण पर निवेश कर रहा है, जो डेट-ट्रैप का ही हिस्सा है।

बेहिसाब कर्ज से आत्मनिर्भरता तो खत्म होती ही है, साथ में संप्रभुता भी खतरे में पड़ जाती है। चीन की डेट-ट्रैप साजिश को दुनिया समझने लगी है। इसलिए उसका विरोध भी शुरू हो चुका है। मध्य और पूर्वी यूरोपीय देशों के साथ अपने व्यापारिक संबंधों को मजबूत करने के लिए 2012 में बनाया गया सीईईसी फोरम, जिसमें यूरोप के 17 देश शामिल हैं और 18 वां देश खुद चीन है, को 28 लाख की जनसंख्या वाले देश लिथुआनिया ने विभाजनकारी बताकर छोड़ दिया है। बुडापेस्ट में 1.8 अरब डॉलर की निवेश वाली शंघाई की फुडान यूनिवर्सिटी की ब्रांच, जो 27 देशों के यूरोपीय संघ में पहला चाइनीज यूनिवर्सिटी कैंपस होना है, के खोलने व वामपंथी विचारधारा के प्रसार के विरोध में हजारों लोगों ने विरोध प्रदर्शन करते हुए, संसद का घेराव किया और जिनपिंग मुर्दाबाद के नारे

लगाए। अफ्रीकी देश चीन के फंडों और उसके निवेशों के फायदे—नुकसान का बारीकी से आकलन कर रहे हैं। तंजानिया ने चीनी निवेश की पड़ताल कर 10 बिलियन डॉलर के चीनी कर्ज के समझौते को रद्द कर दिया। मलेशिया ने चीनी कर्ज के मकड़जाल से बचाव में 23 अरब डॉलर की परियोजना को रद्द कर दिया। म्यांमार की भी श्रीलंका की स्थिति को देखते हुए चीनी परियोजना को छोटा करने की योजना में है।

चीन सैन्य शक्ति के बल पर ताइवान को कब्जे में करने को बेचैन रहता है परंतु चीन की वन चाइना पॉलिसी को विस्तारवादी नीति का हिस्सा मानते हुए जापान ने ताइवान को चीनी नक्शे से अलग दिखाया है। चीन ने जापान पर परमाणु हमले की धमकी तक दी है। चीन के विस्तारवादी नीति व कर्ज के जाल से मुक्ति के लिए विश्व के देश मुखर हो रहे हैं। इसमें भारत की बड़ी भूमिका है, जो कभी विस्तारवादी नहीं रहा। 54 देशों के संगठन हर्ष (54 देशों का हिमालय-हिंद महासागर राष्ट्र समूह), जो सांस्कृतिक रूप से एक व व्यापारिक दृष्टि से प्राकृतिक है, को मजबूत करने से चीनी साम्राज्यवाद पर प्रहार होगा। क्वाड की सक्रियता से भी चीनी विस्तारवाद पर अंकुश लगेगा।

काबुल की गुहार

संपादकीय

तालिबानी आतंकवाद से जूझ रही अफगान सरकार की भारत से उम्मीद जायज है और जरूरी भी। अफगानिस्तान सरकार भारत से हमेशा मदद हासिल करती रही है, पर इस बार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अफगानिस्तान ने भारत से जो मदद मांगी है, वह बड़ी उल्लेखनीय है। अफगानिस्तान के विदेश मंत्री मोहम्मद हनीफ अत्मार ने भारतीय विदेश मंत्री एस जयशंकर को फोन करके संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की आपात बैठक बुलाने की गुजारिश की है। बेशक, यह बैठक महत्वपूर्ण होगी और इसके लिए भारत को विशेष प्रयास करने चाहिए। गौरतलब है, अगस्त महीने में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (यूएनएससी) की अध्यक्षता एक तरह से भारत के पास है। भारत इस स्थिति में है कि वह अफगानिस्तान मामले पर आपात बैठक बुलाने की कोशिश कर सकता है। आज अफगानिस्तान जिस मोड़ पर है, बहुत जरूरी है कि दुनिया बैठकर एक बार विचार करे। अफगानिस्तान को फिर धर्मांध हिंसा के दलदल में झोंक देना है या अफगानियों को भी चैन से सांस लेने का हक है? भारत को अमेरिका व अन्य देशों को राजी करना चाहिए, ताकि अफगानियों को एक शांत व सुरक्षित भविष्य नसीब हो सके। अफगानिस्तान में अगर निरंकुशता बढ़ी, तो आतंकवाद दुनिया के लिए फिर बड़ा खतरा बनकर मंडराने लगेगा।

वैसे अफगानिस्तान को लेकर भारत संयुक्त राष्ट्र के मंच पर पूरी तरह सचेत व सक्रिय है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के अध्यक्ष राजदूत टीएस तिरुमूर्ति ने सोमवार को संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में कहा है कि अफगानिस्तान की स्थिति सुरक्षा परिषद के सभी सदस्यों के लिए गहरी चिंता का विषय है। हम अफगानिस्तान में आतंकी शिविरों को फिर पनपने नहीं दे सकते और इसका सीधा असर भारत पर पड़ेगा। वाकई पूरी दुनिया देख रही है कि अफगानिस्तान में अभी क्या हो रहा है। पत्रकारों ने जब तिरुमूर्ति से पूछा कि हिंसा में वृद्धि रोकने के लिए सुरक्षा परिषद क्या कर सकती है, तब तिरुमूर्ति ने कहा कि उम्मीद है, सुरक्षा परिषद अफगानिस्तान के संबंध में इस पहलू पर जल्द गौर करेगी। भारत के इस रुख के कारण ही काबुल की भारत से उम्मीदें बढ़ गई हैं।

भारत पहले ही स्पष्ट कर चुका है कि वह एक स्वतंत्र, शांतिपूर्ण, लोकतांत्रिक और स्थिर अफगानिस्तान देखना चाहता है। साथ ही, भारत ने अफगानिस्तान में शांति, सुरक्षा और स्थिरता के हर प्रयास का समर्थन किया है। यह पूरी दुनिया के लिए गंभीरता से विचार करने का समय है। लंबी लड़ाई से थककर अमेरिका भले ही अपना दामन छोड़ाकर चला गया हो, पर बाकी दुनिया को तालिबान के सामने घुटने नहीं टेकने चाहिए। यह अफगानिस्तान की वैध सरकार और प्रशासन के साथ खड़े होने का वक्त है। अफगानिस्तान के समंगन और हेलमंद प्रांत में सुरक्षा बलों की हवाई कार्रवाई में तालिबान के एक शीर्ष कमांडर समेत 116 आतंकी मारे गए हैं। देश का कानून न मानने वाले आतंकी समूहों के साथ ऐसा ही होना चाहिए। तालिबानी हिंसा रोकने के लिए अफगानी सेना ने कमर कस लिए हैं और वह लगभग रोजाना हवाई व जमीनी कार्रवाई में आतंकवादियों का खात्मा कर रही है। संयुक्त राष्ट्र को व्यवस्थित ढंग से उस काम को पूरा करना चाहिए, जो अमेरिका नहीं कर पाया। अगर अफगानी सेना व सरकार के हाथ मजबूत किए जाएं, तो वह आतंकियों को मुंहतोड़ जवाब देने में वाकई सक्षम हो सकती है।
